ठहरो, एक निमिष !!

[कविता-संग्रह]

डॉ० राजा करैया



दिनिशा प्रकाशन

© राजा करैया

प्रथम संस्करण नवम्बर, 1984

आवरण
डा० राजा करैया / कातारानी चौगले

प्रकाशक
दिनिशा प्रकाशन,
1594, नेपियर टाउन,
जबलपुर (म० प्र०)
482 001

मूल्य
सजिल्द 25 रुपये
अजिल्द 15 रुपये

क्रमांक 003 84

मुद्रक
केसरवानी प्रेस,
मुट्ठीगंज, प्रयाग

Thahro, Ek Nimish By Dr Raja Karaiya
(Collection of Poetry)

आभार

भाई बाबूलाल कदम के अथक प्रयास और प्रेरणा एव श्री यतीन्द्रनाथ 'राही' के सुसम्पादन तथा विज्ञ-मित्रों के अनुग्रह का, इस कृति के लिए आभारी हूँ।

—डॉ० राजा कैरेया

श्री साईं कृपाकृत

पूज्य

पितृ-श्री-चरणों

मैं

भाव-श्रद्धांजलि

. . . विचारो के द्वद्व मे

डा० राजा करैया से, मैं कभी नही मिला शायद ! और अगर मिला भी हूँ, तो मुझे वह मुलाकात याद नही आ रही।

आश्चय हुआ, यह जानकर कि राजा करैया सन् '51 से लिख रहे हैं ! कविता, कहानी, लेख, व्यग्य। दो कविता सग्रहो का सम्पादन भी कर चुके हैं। आकाशवाणी भोपाल से रचनाए प्रसारित होती हैं। यानी शब्द मे, कविता स इस आदमी का रिश्ता पुराना है, और कविता से उसकी दोस्ती पक्की है।

जो शौकिया कवि होते हैं, वे कुछ समय तक लिखकर लिखना छोड देते हैं, और शान मे यह कहते हैं कि अरे भैया, हम भी किसी जमाने मे कविता करते थे, लेकिन अब तो फुसत ही नहीं मिलती। डा० राजा करैया ऐस शौकिया कवि न पहले थे न अब हैं। जीवन और जगत् से, वे गहरे जुडे हैं। वे सच्चे बुद्धिजीवी हैं। और रोगियो-बीमारियो के बीच भी, उनकी कविता बची रह गयी है, सो महज इसलिये कि उनका विचारशील मन, उनका भावुक हृदय प्रश्नो से जूझता है, और अपन चि तन का अभिव्यक्त किय बगैर नही रह पाता!

मुश्किल यह है कि आज हमारे पास ऐसी कोई सवमान्य कसौटी नही है, जिस पर कविता का परख की जा सके। और उसस भी बडा तकलीफ यह है कि हम अपने पूर्वाग्रहो व तैयार पैमानो को लेकर कविता के पास जाते हैं और तुर त फैसला सुना देते हैं ! जाहिर है कि ऐसा गलत शुरुआत के नतीजे भी गलत ही होते हैं। कविता को कविता का तरह पढना, हमे अब तक नही आया। कविता, निश्चय ही कवि के सम्पूण व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है। कोई दो आदमी एक जैस नही है। इसीलिये हर कवि की कविता के भीतर स कवि को उसके व्यक्तित्व को खोजना चाहिये।

राजा करैया, एक अ वषक की तरह दुनिया को दखते परखते है। उनकी वृत्ति चि तन मे रमती है--उनका लक्ष्य दूरगामी है—"परिधि-पार/दिव्य ज्ञान-बि दु से/क्षितिज के कोण को/देख सब वही/अपना गतव्य/अ तरिक्ष का अन त।"

इनका मन बेहद सवेदनशील है-अपनी पीडा के प्रति और दूसरो के दुख-दर्दो के प्रति भी। सवेदनशील हृय बगैर कोई डाक्टर, रोगी की चिकित्सा ही कैसे करेगा ?

अपन आलोचको/नि दको से वे कहते हैं "पीडा का मम/तुम्हें ज्ञात नही/खाली कर लो/पूण तुम्हारा तरकस।"

महानगरीय सभ्यता, स्वार्थी दृष्टि, औपचारिक सम्बधों के प्रति, उनके मन में भी गहरा आक्रोश है "विक्षिप्तता को/मानसिकता ओढ़े/कृत्रिम भौतिकता के कुहासे में/डूबा है मेरा महानगर/ऊब से जुड़े हैं लोग/अनय की मीमांसा भूल।" लेकिन क्या मात्र चित्रण कर देने से ही स्थितियाँ बदल जायेंगी ? अनय का दुश्चक्र तोड़ने के लिये, संगठित प्रयत्न करने होंगे, शब्दों की धार तेज करनी पड़ेगी—'अभीष्ट' शीर्षक वाली रचना, कवि की प्रतिभा का, उसकी शब्द-शक्ति और अभिव्यक्ति का समर्थ प्रमाण है—"आओ, शब्द जाल फेंको/एक-एक शब्द/परख-तराशकर देखो/नाद का वाघ स्वर में/भाषा माध्यम समन्दर में/प्रतिपल सामर्थ्य-भर देखो।" हम आश्वस्त हैं कि कवि शब्दों को और भी बारीकी से परखेगा और उनकी सामर्थ्य दिनोंदिन बढ़ती जायेगी।

कवि, खूब अच्छी तरह जानता है कि परिवर्तन के लिये, जन-जन में चेतना जगानी होगी। केवल उपदेशों से काम नहीं चलेगा। कवि-कलाकार को भी अपनी अस्मिता दाँव पर लगानी पड़ेगी।—"अस्तित्व का/अन्त हो जब सन्निकट/अस्मिता लगा दो दाँव पर/स्वयं भी भस्मीभूत होना होगा/अपना अस्तित्व भी/करना होगा समर्पित।"

व्यक्ति और समाज का, अन्तर और बाह्य का, विचार और कर्म का द्वैत ही सबसे बड़ा समस्या है। कवि-मन सम्भवतः इसी द्वैत के बीच भटक रहा है। कभी उसको लगता है कि उम्र बिखरी धूल हो रही है और मन का 'सरगम' चुका-सा है। और वह अपने-आपको ढूढ़ने लगता है। लेकिन तभी उसे लगता है कि सन्तुलित संयोजन में ही जीवन का सत्य छिपा है। इसी द्वंद में कवि घिरा हुआ लगता है। आत्मान्वेषण और आध्यात्मिक चिन्तन शायद उसे ज्यादा प्रिय लगते हैं। तभी तो उसकी भाषा जटिल और कहीं कहीं दुरूह भी होने लगती है। लेकिन जब उसे अपने आस पास की, पीड़ित जन की याद आती है, तो वह परिवर्तन के लिये तत्पर होने लगता है।

इस द्वंद का समाधान स्वयं कवि को ही खोजना है (क्योंकि हर एक को अपना सलीब खुद ही खोजना पड़ता है)।

और, जिस दिन राजा करैया यह समाधान पा लेंगे उसी दिन से उनकी कविता में नई शक्ति, प्रभाव और प्रेषणीयता की चमक आ जायेगा।

शेष फिर

जावरा, —दिनकर सोनवलकर

15 फरवरी, 1984

. . . मन की धरा है,
बुद्धि का आकाश . . .

डॉ० राजा करैया—एक डॉक्टर, एक आदमी, एक कवि। होशंगाबाद का हृदय स्थल सराफा चौक। वहाँ एक दवाखाना। सड़क से गुजरिये, बरबस नजरें उठ जाती हैं, और क्षण-दो-क्षण ठिठक भी जाती हैं। पुतलियों में उतरता है अक्स। एक खूबसूरत प्रौढ़ व्यक्तित्व। दवाखाने में डाक्टर की कुर्सी पर बैठा एक गोरा चिट्टा आदमी। चश्मे के भीतर चमकती आँखें, पान से रचे होंठ, सदा सफेद कपड़ों में आवेष्ठित। भीतर भी कोई कालिख नहीं। मरीजों के अलावा तरह-तरह के लोग। घिरे हुए डॉ० राजा करैया। सबको भुगताते हुए। कवि, लेखक, पत्रकार, राजनीतिक कोट सब मिल सकते हैं, उनके बैठकनुमा दवाखाने में। सबसे बतियाते, चाय चुचुआते, पान-पनही करते, निर्विकार अपने कर्म में रंचमात्र भी शिथिलता नहीं आने देते। कर्म-कर्त्तव्य और सामाजिकता का ऐसा संगम अन्यत्र दुर्लभ है।

वैसे, मैं होशंगाबाद कई वर्षों से आ रहा था। अचानक, एक कलाकार की गोष्ठी में, मुलाकात होती है राजा करैया से। उनकी कविताएँ सुनता हूँ। अजीब सी अनुभूति होती है। लाग छोड़कर सब कुछ। कहीं, किसी से नहीं मिलते। वाद-विवाद के घेरे में फँसी आज की कविता, पुरानी कविता, कोई पूर्वाग्रह नहीं। मन का छूत, दर्दीले मन से उठे, बुद्धि के चश्मों में भीग नहाये, निराले स्वर। परिचय, धीरे धीरे घनिष्ठता में तब्दील होता गया। होशंगाबाद-प्रवास की प्रत्येक शाम साथ गुजरने लगी। दवाखाने में मरीजों के साथ, सब तरह के लोगों को भुगतान-निपटाते काव्य का सृजन। मैंने इस प्रक्रिया को स्वयं देखा और देख रहा हूँ। कविता वे सुनाते नहीं। छोटी छोटी पर्चियों में उभरे शब्द-चित्र सुधी जन के आगे बढ़ा देते हैं। कुछ नहीं कहते। आप पढ़कर सराहें तो प्रसन्न होंगे। न सराहें, तो कोई दुःख नहीं। मशविरा देंगे, तो तुरंत अमल में लायेंगे। सरलता सामर्थ्य तोड़ती हुई। इसी तरह चुटकों पुरजों में खण्ड-खण्ड बिखरी-हुई कविता इष्ट-मित्रों के आग्रह पर, किसी तरह संग्रह का आकार ले पाया है।

राजा करैया, डॉक्टर हैं। दिन-रात रोगों और मरीजों से वास्ता पड़ता

करता है। पीडित मानव और कराहती मानवता से रोज का निरंतर सम्पर्क है। फूल की कोमल पखुरियों-सा कवि का मन और एक संवेदनशील चिकित्सक की बुद्धि। लोगों का दु:ख दर्द पीड़ा हरते-हरते, खुद पीड़ाओं से भर गया है उनका स्वप्निल व्यक्तित्व। पीड़ा कविता बनती है। मन, काव्य का उद्गम बन गया। बुद्धि, शब्दों के बेलबूटे तराशने लगी। एक लम्बा अर्सा हो गया, यह निष्काम कर्म करते उन्हें। कोई महत्वाकांक्षा नहीं। कविता उनके लिये पूजा-आराधना का दर्जा रखती है। प्रचार-प्रसार के दोनों माध्यमों से, वे सर्वथा असंपृक्त हैं। कवि-गोष्ठी, कवि-सम्मेलन, पत्र पत्रिकाओं—सबसे विरत् लेखनी चलाये जा रहे हैं। कुछ परिचितों और मित्रों की सीमा में ही, उनके काव्य की सुरभि फैलती रहती है। और, वे इसी में संतुष्ट-तृप्त हो जाते हैं। पतले अधर और क़ुतरी मूँछों के मध्य उलझी मुस्कान और कभी-कभी अट्टहासों से सड़क तक को चौंका देते हैं—कवि करैया। मरीजों से निहायत आत्मीय व्यवहार और दो-टूक बात करते हैं डॉक्टर करैया। अर्थ के पीछे भागकर, अपने पेशे में छल का समावेश वे कभी नहीं कर पाये। भगवान् दाल-रोटी ईमानदारी और श्रम की टपकी स्वेद-बूँदों से जुटा दे—बस, इसी में मस्त रहते हैं वे। दरबार में लगी भीड़, तरह तरह के चेहरों, हर वर्ग के लोग, आदमी के रूप में उनकी पहचान बनाते हैं। अपने सहज-सरल व्यवहार से हर आने वाले का दिल वे जीत लेते हैं। अनेक खूबियों के मालिक हैं—राजा करैया।

अब आता हूँ उनके काव्य पर। चौराहे की भीड़, वाहनों का शोर मरीजों की रेलमपेल, व्यवहारिया मित्रों का प्रभा मंडल क्या अनोखा परिवेश, अपनी पूरी ऊर्जा से उमड़ता लहराता जीवन! यही है वह वातावरण, जहाँ राजा करैया का काव्य फूटता है। तन्हा, एकान्त नीरव-प्रकृति का मोह या निराला कक्ष, यह सब उनके लिये व्यर्थ है। मन तो भीड़ में हो या अकेले—मन ही रहेगा। जल में रहकर कमल पत्र—ऐसा ही मन है राजा करैया का। उनकी कविता की एक पंक्ति है—"मन की धरा बुद्धि का आकाश।" संवेदनशील भावुक मन और एक सजग जागरूक चेतना वाली बुद्धि। इन दोनों के संगम से, उनका सारा काव्य ओत-प्रोत है। मनुष्य की पीड़ा, समाज की पीड़ा ये सारे तत्व, उनके काव्य में रेशे-रेशे में रचे बसे हैं। कविता की किसी विशेष शैली से उनका कोई लगाव नहीं है। कथ्य के अनुकूल भाषा उनका निजी शिल्प है। भाषा भी द्वितीय स्थान पर है। कथ्य ही प्रमुख है। अनेक काव्य में जगह जगह ग्रामीण रंग भी बड़ी खूबी से उभरा है। एक-से एक सुघर चित्र, वे उकेरते चलते हैं। इस चित्रमयता का कारण यह है कि वे एक कुशल चित्रकार भी हैं। सारे काव्य में वहीं

कृत्रिमता या भरती का कोई बिम्ब नही मिलता। सब कुछ सहज स्वाभाविक और नैसर्गिक है।

इस मानवीय सृष्टि मे कवि का मन लेकर जीना अत्यन्त श्रामद है। पावस पधारती है, नमदा की उत्ताल तरगो पर बूदो की झालर तन जाती है। बडे-बडे पेड मस्ती म पछाडे खाने लगते हैं। आकाश से पृथ्वी तक दामिनी एक रजत-रेखा खीच देती है। पपीहे, 'पी कहाँ' पुकार उठते हैं और खिडकी मे बाहर निहारते गीले-नयनो से कवि का मन उन झोपडियो म घुमडते प्रलय-प्लावन को बिसूर रहा है। कैसा कठिन युग है! ऐसे ही परिवेश म कवि कालिदास न मेघदूत' रच डाला। आज का कवि क्या करे? शिशिर की शवरी, बसन्त का मदमाता पवन––आज कोई अर्थ नही रखते है। कुहुकती-कोयल, पेड शाखो के तले बिछे पलाश, महुये और मजरियो की गध गहराती जीवन म कही भी ताल मेल नही रखते। पर, राजा करैया के काव्य म ये सब भी पाठो के धागो मे बधे जगह-जगह बिखरे हुये मिलेंगे। उनका बिम्ब-विधान परहज व पूर्वाग्रह से परे है। प्रचार प्रसार, गुटबाजी, सबसे परे उनका काव्य परवान चढा है! उनकी साधना न काफी लम्बी दूरिया तय की ह। प्रौढ प्राजल, मन और बुद्धि के रिश्तो के बीच वन-कुसुम की तरह खिला उनका काव्य, हर सुधी पाठक को अभिभूत करने की क्षमता रखता है। उनके, इस पहले काव्य सग्रह का निश्चय ही हिन्दी जगत स्वागत करेगा––ऐसा मेरा विश्वास है।

होशगाबाद-प्रवास
मई, 1984

—आनदी सहाय शुक्ल
जनकवि–छत्तीसगढ



उतार फेंक
छिलके झूठ के,
वृथा के
जीवन-दर्शन से
मिलेगा सत्य-फल तब
बावले मृगतृष्णा के !

रोक न पथ कभी
हित जनहित के
देशों का मज्जन कर
शिव कर,
साधक तत्व है
जीवन के !!

तब
दृष्टि-पथ,
धर्म-पथ निखरेगा,
उभरेगा।
चेतन के
ज्ञान के
सृष्टि में कण-कण में
सौंदर्य बोध से !!!

–डॉ० राजा करैया

होशंगाबाद,
दिनांक 10 अगस्त '84
श्रावण शुक्ल 14 वि स 2041

. . . अनुक्रम

सत्यम्

शिवम्

सुन्दरम्



सत्यम्

. . . सत्य

अपनी समस्त
सात्विकताओं के साथ
शिराओं में
शीतलता दे रहा है
सत्य ।
जिसके ओज से
असत्य अपाच्य हो जाता है
आमाशय में ।

शाश्वत् पृष्ठ धरा पर
यथार्थ-सा अडिग
ठोस तत्त्व-सा छूता
अन्त तल
सनातन सार दे रहा है
सत्य ।
छिपाये न छिपे
काई-सा उतरा जाये
बहुआयामी आवटोपसी झूठ
छिद्रान्वेषण से
उजागर हो जाता है आशय में ।

सत्यासत्य विश्लेषण
करता है
नीर-क्षीर विवेक
जिससे
प्रशस्त मार्ग होता सदाशय में ।।

. . . मरीचिका

एक सुख की नीव मे
कितना भरा है
दु ख घनेरा
स्वेद श्रम को सीचता है
खून के कतरे भरी कत्तल
जज्बात पत्थर से जुडी हैं
हाथ की भट्टें
फफोले पॉव के
देती थकी चितवन
धुपलाया वदन
निचुडे आंचल से
चूसता जीवन
बच्चा बेसहारा
श्रम को कहानी-भर है !
इमारत मे नही अब अंधेरा
भव्यता रचना निर्यात है
झोपडी का मन लिये
जिन्दगी भटकी अधेरो
भूख के मोल विकती
जुड गया इतिहास इतना
वैभव की चकाचौंध मे
अब है सुख का बसेरा
'डिस्को' संगीत

नर्म कुशन
मद्धिम उजेला
तनावों के ढलते प्याले
खनकते जाम भर खुशी
गम गलत को
कहाँ है बचे गम
जिस्म की रूमानियत की
दौलत नहीं कम
एक आश्रित ज़िन्दगी
लिपटा झमेला
आसान मौत जीते
तानते वितान
खूबसूरत भुलावा
कर सको तो
दुःख की नींव पर
कर लो सवेरा !

. . . चाहे-अनचाहे

वे
जला रहे है
और हम हैं कि जल रहे है
जितना वे चला रहे है
उतना भी हम कहाँ चल रहे हैं।
एक परतंत्र मानसिकता लिये
हम स्वतंत्रता मना रहे है
दायित्व-बोध ढोते
किस्मत को रोते
भाग्यवादी हुये जा रहे है।
होते प्रेरित कर्म को
संचित शक्ति करते
अनुपलब्ध साधनो से
फिर काम भी
कहाँ मिल पा रहे है।
सामर्थ्य का तिरस्कार
गुणो की अवहेलना
नैतिकता का बोझ
अनचाहे ढो रहे हैं
कैसे तो क्या होना था
कैसे ही हो रहे हैं।

. . . सभ्यता में

अपनी लाचारी से
पूर्ण आश्वस्त हूँ
क्योंकि
पहुँच के सारे प्रदाय मेरे
करने लगे हैं अब
मेरा ही शोषण ।
खोखली हो गई है जड़ें
जीवन-तत्त्व-शून्य
आहत् हो चुका
आत्मविश्वास ।
रक्षा की आश्वस्ति
हो गयी है निर्मूल
इस लगड़ी सभ्यता में
संस्कृति है अधी
अवमूल्यित हुआ—
जीवन-मूल्य ।



... महानगर

विक्षिप्तता की
मानसिकता ओढे
कृत्रिम भौतिकता के
कुहासे मे डूबा है
मेरा महानगर
प्रकृति की विस्तीर्ण
निश्छल निर्मलता के
आगोश मे
यांत्रिक व्यस्तता मे
अर्थ से जुडे हैं लोग
अनर्थ को मीमासा भूल
नैतिकता मात्र दिखावा है
भावना से जुडकर भी
बिखराव है
कुहासो मे डूबा है
मेरा महानगर ।

. . . आधुनिकता की धार

उपले पाथता समय
निश्चिन्तता दुहती दूध
पशु-पक्षी की
सेवा सा सुख
सबका-सब बँट जाता है
परिवार मे
रिश्तो का स्नेह
बहाता समाज
अब आधुनिकता की धार पर
कट रहे हैं टुकडे-टुकडे
गाँव का निश्छल-मन
क्योंकि अब
शहराती हो गया है।

...आदम की गंध

गम की
पहली बरखा से
सौंधी, माटी की
देह-गंध !

श्वेत-श्याम मेघ
शीतलता ओढे
पवन वेग
सिहरन भरता
स्नेह बंध !

अभाव अवहेलना
आतप से
राहत की साँस लिये
फिर—
आवारा फिरती है अंध !

एक बोज
मानवता का
फिर-फिर अकुआता है
अनपेक्षित दबावो मे
खोजता है
आदम की गंध !

...भाग्य के तोते

वह कडो टूट गई
जिससे जुडे थे सस्कार
सकल्पो के समोकरण
जोवन के गुणा-भाग
अब भाग्य के तोते
हाथो से भाग रह है
रटे हुये को ही
स्वय उघाड रहे है
आदर्शवादिता को
किताबो मे दीमक चाट रही है ।
सकल्प जड दिये है
स्वार्थ की फ्रेम मे
उद्देश्य के आह्वान पर
ऐक्य का अभाव है
बडी-बडी अपेक्षाओ मे
सडाध की बू है
देश और मानव प्रेम
आकर्षण के नारे भर है ।
कडी टूटना
भाग्य से छीका टूटना है ।
क्रान्ति से प्राप्त होने वाली
स्वतत्रता का
अनायास हस्तगत हाना है
गुलाम आहो मे
अब कौन-सा बोघ होना है ॥

...मुखौटा

मुखौटो मे
बँट गया व्यक्तित्व
अस्तित्व को
बनाये रखने मे
और समय की पहचान
देती है सीख
अपना, भले न हो अपना
पराया है
एक सपना
मुखौटा चीरकर देखा—
मिला विकृत आदमी
पहने विविध मुखौटे
अवसरवादिता के रूप !

. . . जरूरत

शान्ति की शान्ति के लिये
अब क्या होगा ?
—परमाणु आयुधों का प्रयोग !
तब क्या हम कहीं भी
बचा पायेंगे अपने अस्तित्व को
हमें भी हक और हौसले से
रहना होगा तैयार
अपने-अपने स्तर पर
देश के खातिर
करना होगा कार्य
जब—
जवान को जरूरत होगी
देना होगा खून
न भी दे सको अपनी असमर्थता से
क्या मिल सकेंगी
तुम्हारी सेवा से
पानी की दो बूंद ।



. . . सक्रमण

उपलब्धियाँ बौनी हुई
कटे प्रतिभाओ के पख
भ्रान्तियो ने गढे सपन
मृगतृष्णा हुई मजिलें
राहे बढती गयी ।
अनथक परिश्रम से श्लथ
मान्यताएँ खोटी गयी
प्रश्न ?
अब इनसे परे है
कौन पर विश्वास करें
क्षमताएँ कहाँ धरे
कृत्रिम मुखौटे
हर किसी के
चेहरे मढे है
हम भी उन्ही मे पडे है ।



...परित्राण

णु आयुधी
आंख
परग को बना रही है
धधक दृष्टिपथ ।
लक्ष्य सशयाकुल है
अपः स्वचालित प्रतिक्रिया भेदी
किन्य अस्त्रो से
उन ध्वस्त कर सकते है
आगतश के मसूवे
जो स के कगार-पथ ।
विचन्तेह कितनो है
विध्वपिका मानवता पर
भयालधी-दौड
विभीनी अभिशाप-शर
एक क के विकल्प होते कम्प्यूटर
विज्ञानी-मानव
मस्तिकता यत्र-चालित
मशो है अतृप्त भोग मे
भौति ही जाल मे है श्लथ ।
लिप्त ल्यित नैतिकता मे
अपनेगीति
अवमूति धर्म है
राजनक
कूटनी
नास्ति

नकारात्मक व्यय
स्वयभू हुआ भाग्य-हत् ।
शान्ति के लिये युद्ध
या युद्ध को शान्ति हो
कि शान्ति हो मानवता
युद्ध के विकलाग-पथ ।
व्यवस्था-नीति देता धर्म
आध्यात्म निगूढ तत्व
मानवीय त्राण को हो
शाश्वत् योग-रथ ।

...शाख और वृक्ष

विभिन्न धर्मो की
शाखो को देता सम्बल
देश-एकात्मता का वृक्ष
पृथक्तावादी हवा से
हर शाख आन्दोलित है
एकाधिकार का दायित्व
उद्घोष कर
छोडना चाहते है मूल
दिवालियेपन की हद्दो को
स्वार्थ से खीच
करना चाहते है
वृक्ष को नष्ट समूल
अपना अस्तित्व भूल
काटना चाहते है वही
शाख
जिस पर बैठे है
जमाये धर्म-साख
स्वतत्रता का उजेला
जब बुझ जायेगा
तब रात्रि मे
हर शाख पर बोलेंगे
आधारहीन कैसे डोलेंगे
वहशी हुये हाथ मे लेंगे
भिक्षा-पात्र
जो स्वय का करते हैं मूलोच्छेदन
उन्हे कौन देगा
स्नेह का हाथ !

. . . नग्नता

घृणा का तिलक लगाये
नाक-भौ सिकोडते लोग
क्या जानते नही
कि जिस्म गदा है या बासी
काम के आगे अधा है
वर्ग-धर्म परे
पाशविक भूख मे
पाता स्वय को नगा है ।
परिणामो से बेखबर
समाज बीमारी-ज्वर
अवरोध नही
क्षणिक उन्माद मे
कही सयोग नही
असहाय बेवस भोग
एकागी सहयोग
बेमानी है
चिथडो मे लिपटे हो
या घूरे-पुल पर पडे
असमर्थता बोध ढोते
या सजे-सवरे हो
जिस्मानी-उभार-प्रदर्शन
देह-व्यापार नही
तो किस अबूझ श्रेणी मे
इन्हे रख
समाज के मूल्यो मे
परिवर्तित कर
जिस्म को ढाँप सकेंगे हम !

. . . विकलागता

प्राकृतिक विसगतियो से
विकृत रूप
हीनग्रन्थि बाँध दी
समाज की कुदृष्टि
और अधविश्वासो ने
भ्रान्ति पैदा की
प्रात दर्शन
रास्ता काटना
आदि से
विकलाग मनोवृत्ति को
विश्वास का रूप दे
रचनाकार की कला का
उडाया विद्रूप हास्य
उनमे छुपी अन्तर्दृष्टि को
क्षमताओ की कसौटी पर
कौन तौल पाया ?
अभग अग वालो को
विकलागो ने दी वैसाखी
अपनी प्रतिभा से
जो नैसर्गिक वरदान है
प्रकृति प्रदत्त उन्हे
कला-सगीत साहित्य रूप मे
पूर्ण किया उन्हे
लक्ष-लक्ष अखडित मानवो के
खडित कर दिये गर्व
विकलागो ने सगर्व ।

. . . सस्कार

आस्था की जड़ें
गयी है बहुत गहरे
पीढ़ीगत सस्कारो से पोषित
पूर्वजन्म के गुणक
सवाहक सघटको से पुष्ट
जिससे सम्यते है
वर्तमानी परिवेश ।

विकारो की छाया
जिसे निगलकर भी
ढक नही पाती पूर्ण
कुवृत्तियाँ लौट जाती है
लहरो की तरह अपूर्ण ।

कटते किनारे बहुत धीरे-धीरे
अनाकृतियो मे भी है
उनमे सस्कारो का आकार ।
सजोये हुये
देशकाल का अस्थायी प्रभाव

अपनी तरह से सम्य
मृत्तिका के कच्चे
टूटते किनारो को
जो है अलभ्य ।

. . . विकृति की कुंठा

क्रूर कुत्सित कुंठाएँ
चाट गयी प्रतिभा
अभाव हुई आदत
नीलाम होता व्यक्तित्व
सन्नास के फन्दे मे
हौसला है पस्त
विकृत आकृतियाँ
थोथे प्रकाशन से
आत्मश्लाघा त्रस्त
जीवन का अवमूल्यन हुआ।
खुला चित्रपट
व्यवस्था के हाथो
सपादकीय हुये आदर्श
जिन्दगी की किताब के
अनलिखे पृष्ठ
आधुनिकता ने भर दिये
नयी कविता
मॉडर्न आर्ट
पॉप सगीत
पाप-पुण्य की माया से दूर
कृत्रिम मुखौटे से
भ्रष्ट मानस
चरित्र का अवमूल्यन

भविष्य से बेखबर
अक्षमता से कांपते सकल्प
यान्त्रिक भौतिकता मे
नशीली पीढी का उदय
सस्कारहीन
नवीन सस्कृति की
जमीन पर उतरते पाँव ।



. . . सामर्थ्य ?

देने वाले हाथ
देते-देते थक गये
अब कैसे माँगेंगे ?
नज़र बँध गयी
अदेखा करते
देखकर भी नहीं
देखने की क्रिया
कानों का साथ छूट गया
अनसुना करने की आदत से
ज़बान लड़खड़ाती है अब
जो देखा सुना है
उसे भी
बयान करने की ताकत नहीं है।
ज़मीन-सिंचाई की सुविधा
रहते भी
पेट को नहीं है अन्न
अब तो सब टूट गया
तन ही नहीं
मन भी
सब छोड़ते हैं साथ
क्या परिस्थितियों के आगे
झुका दें अपना माथ ?

●

. . . भूख

ओफ !
कैसी लगी है आग !!
जल रहे है पेट
अभाव से नही
अतृप्ति से
सब कोई
भरना चाहते है इंधन
जलन कुछ तो कम हो
तन की माँग है
सुरसा-सा गान
किस तरह अन्त हो
अनैतिक
भ्रष्ट
अमानवीय
सब साधन
पेट भरने को
हैं कम
ये कैसी भूख है
मिटाये नही मिटती
भौतिकता के भार से
क्यो नही उबरती
शासन-समाज सब
हो गये है मूक
बधिर
क्या इतना भी ठडा हो गया
हमारा रुधिर ?

...रिसते-घाव

मानव-समाज पर
उग आये हो फोडे
चिथडे लपेटे है
आसमान ओढे
अकारथ हुआ जीवन
समाज सिद्ध निगोडे
न कर सकते
पलायन जिन्दगी से
रिसते-घाव बीमार
मांगने को पेट
न कोई लाग
न लपेट
निस्पृह जीवन
मोह जीने पर
खाते है
ठोकर सीने पर
पीढियां गुजार दी हे
कौडियो पर
लुटे-पिटे
ये सभ्यता
अब समाज मे बेकार
मांगे भी न मिलती बेगार
ट्रेन

बस पर
याचक हैं
पसारे हाथ घर-घर
उस पर भी सह रहे
प्रताडना उनसे
जिन्होने बनाया है
इसे पेशा
और
सही-गलत का
कैसे हो निदान
भिखारी भी हो गये असमान
समाज-सरकार के दायित्व
रिसते घाव का निशान !

. . . नासूर

यातनामय
बोझिल साँसो की
पराजित धडकनो मे
मौत की छाया का साक्षात्कार
कर रहा है मरीज
बार-बार !
अधुना-यत्न दावा
(आर्थिक विपन्नता से)
दायरे-बाहर
विज्ञान की देन
दुखती-रग
असमर्थ अर्थ से
जी रहा है
आम-आदमी
व्यर्थ से
मौत भी मागे न मिले
आत्मघाती सघर्ष से
अभिशप्त जीवन लिये
जीने की
बुनियादी इच्छा को
दे दो सूली
सुई की नोक पर
(यूरेनेशिया)

सुखदायी ढग पर
जीवन का सहज अत
समाज के नासूर से
एकबारगी छुटकारा
शरीर
यातना से दूर
आत्मा मे विचरेगा बेचारा
उपलब्धियो के हाथ बाँधे
विज्ञान
असमर्थ-बोध से
आम-आदमी तक पहुँचते पहुँचते
शोध-अनुसधान मे
एक बार फिर लग जायेगा !

●

. . . समयांतर

उत्सवोपरान्त की
निवृत्तात्मक निष्क्रियता मे
अवांछित
अनुपयुक्त
अनाधिकारो की बाढ आई
जैसे बोवनी-पूर्व की वनस्पति
सोख लेती है
जमीन को उर्वरता
अनधिकृत् पौधे के लिये
जिसे समूल नष्ट करना होता है
फसल के प्राप्तव्य-अभीष्ट के लिये
वह पौध का बीज ही
विकृत हो गया हे
समयान्तर मे
दिशाहीन
पाश्चात्य मे रगा
लिप्त
आभिजात्य का अश
अपरिचित है
कर्त्तव्य वोध से
शिक्षा को
जडत्व नीति के वोझ से
क्षमताओ का वोध दे

ऐसा आह्वान क्या
कर सकेंगे
क्रांतिधर्मी
आवाम के अनुरोध से
जो अवांछित को
विस्थापन कर
समाज-पीढ़ी को
स्वस्थ सामर्थ्य की चुनौती दे
आमूल परिवर्तन का
संकल्प ले
पाये
अपने अधिकारों का प्राप्तव्य !

●

...उत्तिष्ठत–
जाग्रति–
–सयमी

प्रकोष्ठ मे
आस्था स्थापित कर
उसी मे बँध जाना
धर्म तो नही है !
पूजा-पाठ, घटा घडियाल, आरती
उषा की लालिमा से रात्रि-शयन तक
मात्र सेवा बधन ही
आवरण रह गये,
साधना के साधन तो नही है !
पूजा-पाठ प्रतिष्ठा
प्रकाशन के प्रत्यय हैं
निष्ठा के कृत्रिमावरण
आस्था आत्मशसा हुई
श्रद्धा भावहीन–
आत्म उत्थान तो नही है
शुद्धात्म प्रवृत्तियो मे
जीव से जीव की
जोडने का शाश्वत् प्रेम
अन्त की आवाज सुनो
सृष्टने की क्षमता नही

तो ध्वंस का
अधिकार तो नही है
धर्म से धन्य होती है
मानव योनि अलभ्य
साध्य हल करने
एक सनातनी लोक है धर्म
विभिन्न मार्गों मे
उलझ जाता है मर्म
लक्ष्य का लालित्य
विकारो को सङाथ
विकृति का उपादान देती है—
इसमे कही भी तो
धर्म की धारणा नही है !

. . . प्रलय

देख रहा है विदग्ध मानव
अमित अणु-शक्ति संहार
ब्रह्माडीय ज्वालामय ग्रह
सूरज का तप-तेज क्षीण
चन्द्र हुआ अग्निपिंड अब
फैल रहा प्रलयांधकार
महाप्रलय का हाहाकार !

... प्रश्न

चिन्तन !
चिता का होता है
अब चिरन्तन !
क्योंकि
जीवन धधक रहा है
जलती धरती पर
वैसे चिता से
उठा दिया जाता है
आदमी
जीवन के लक्षणों पर
पर जलती
जिन्दगी को
कैसे हटायेंगे ?
प्रश्न है !
आत्मघाती समस्याओं ने
बरबस मरणाकांक्षी बनाया
जीवन की लिप्सा
निराशा के धुंयें में
अनचाहे बांधती रही
और
सोख ली गयी इच्छाएँ
जिजीविषा के सोखने से
खोखल में पिंजर के
फिर भी जीवनाशा जल रही है—
एक दीपक की
टिमटिमाहट-सी !

शिवम्



. . . मृगतृष्णा

मन की दौड
कल्पना की गति
कैसी हो फिर
मानव की मति
सत्य सदा से
है स्पष्ट
किन्तु वृथा के
ऊहापोह मे
क्यो है मानव ?
फिर सन्तुष्ट
भ्रम से भ्रमित
व्यथित व्यर्थ मे
फिर भी करे
स्वप्न सचित ।

. . . तम

अखण्ड
शाश्वत् है चिर अंधकार
अवधिग्रस्त प्रकाश से
अचिरन्तन विकीर्ण
सत्य है तम
जैसे अक्षुण्ण है दु ख
सुख मात्र बिम्ब
अच्छाई क्षणिक् भ्रामक
बुराई से आकलन
मृत्योपरान्त भी जाना है तम मे
प्रकाश है असम्प्रक्त
तममय समाधि
सुप्तावस्था
श्रम परिहार्य है अँधेरा
इसलिये
आलोकित हो आत्मा ।

. . . लक्ष्य

मन की धरा है,
बुद्धि का आकाश
ज्ञान के क्षितिज का
होना है विकास
कल्पना के पाँखी
उन्मुक्त उडान भरें
विचारो के वृक्षो पर
नव-विहान करें
भावना-सरिता से
हो सिंचित जीवन
सकल्पो के गिरि
लक्ष्य—
बढते साधन !

. . . अनखुली गाँठ-सा जीवन !

पीपल के पत्ते-सा
काँपता भय ।
मस्तिष्क के कोटरों में
चमगादड़ी चिचियाहट
कोलाहल की आँधी
और सन्नाटे का
झींगुर-मन
अनागत का आभास
भय का जनक भ्रम
स्थायी अतृप्ति का
मूर्त रूप
मस्तिष्क पर अतीन्द्रिय भार
एक भयाकुल मनोविकार
उम्र-दर उम्र
करता तार-तार
भ्रमों से पोषित-मन
अनखुली गाँठ-सा जीवन !

●

... रेत की तरह

समय की घडी से
उलट-पुलट फिसलते दिन
खोते जा रहे हैं
अपना तीखापन
रेत की तरह
अनुभव पी चमक गये है
समय की सीख से
अनवरत अभ्यस्तता को
कसौटी पर कसे
नि सारिता से मुक्त
नियमन करते हैं
घटी पल
फिसलती रेत से
अविकल ।

... अस्तित्व

अस्तित्व का
अन्त हो जब सन्निकट
अस्मिता लगा दो दाव पर
अर्जित ओजस्विता को
अभिमन्त्रित कर
अपने आत्म शर से
अग्निदाह को आमन्त्रण
आततायी को भस्म कर
शक्ति शौर्य का सुनियमन कर
समूचे गांव-शहर-डगर
आप केवल अरिहत हेतु हो
ऐसा जब नहीं
स्वय भी भस्मीभूत होना होगा
अपना अस्तित्व भी
करना होगा समर्पित
सम्पूर्ण विश्व हिल जायेगा
आत्मशक्ति से
अणु-अणु विस्फोटित होगा
निस्तेज हुआ जन
जब क्रान्ति बीज से
अकुरायेगा ।

. . . प्राप्तव्य

और
जब सारा सुख सिमट कर
केन्द्रित हो जाता है
मात्र एक इच्छा की पूर्ति को
तब सारे दु ख
गौण हो जाते है
दर्द बिखर जाते है
शेष सारी इन्द्रिया एकीभूत हो
प्राप्तव्य की

पूर्त्ति को जुट जाती हैं
ज्वार के शिखर पर
लालसा के अन्तिम उच्छ्वास तक
ऊद्रेक सुलगता है
जो चरम की प्राप्ति
या अप्राप्ति पर विखर
शैथिल्य पाता है
सुख का बिम्ब
क्षणाधिक सुख दे
अपने सम्पूर्ण अस्तित्व को
नितान्त दु ख की अमराइयो मे
विलीन कर
मर्मान्तिक पीड़ा को
मात्र शान्ति को
सन्तुलित सयोजन
अपेक्षित है ।

टूटते अहसास !

[illegible] को अकेले पर
उलझते [illegible] मे
सपनों मे पलते
टूटते अहसास हैं ।

सभ्यता के जामे मे
पीढियो के सस्कार
सजोते पीढी-दर पीढी
टूटते अहसास हैं ।

दर्द ढोते हुये
इच्छाएँ मर गईं
चेतना-शून्य होते
बिखरते विश्वास है ।

आस्था ने जोडा-भर
दिया एक कर्म-पथ
शक्ति दे अन्त अग्नि
आसते मधुमास हैं ।

. . . प्रतिभा

प्रतिभा की चिड़िया
क्षमता की चोंच से
विचारों के दाने चुग
अग्राह्य को त्याग
आशा के वन में
कल्पना के पंखों से
स्वच्छंद करती विहार।
समर्थ व्यवस्था के
बाज से बचाती
स्वयं के व्यक्तित्व का अस्तित्व
स्वतन्त्रचेता है।
साधनों के तिनके जुटा
उपलब्धि का नीड़ बनाती
देशकाल परिस्थितियों के
अंधड़ बिखर देते
जिसे बार-बार
आत्मबल संजोती
विश्वास की बाती उकसाती
मुस्तैदी से जी रही है
अपनी सामर्थ्य।

. . . टूटते अहसास !

भ्रान्ति की जमीन पर
जन्मते प्रवचना मे
व्यग्यो मे पलते
जीते उपहास है ।

सभ्यता के जामे मे
पीढियो के सस्कार
सजोते पीढी-दर पीढी
टूटते अहसास हैं ।

दर्द ढोते हुये
इच्छाएँ मर गई
चेतना-शून्य होते
बिखरते विश्वास है ।

आस्था ने जोडा-भर
दिया एक कर्म-पथ
शक्ति दे अन्त अग्नि
आसते मधुमास हैं ।



. . . प्रतिभा

प्रतिभा की चिड़िया
क्षमता की चोंच से
विचारों के दाने चुग
अग्राह्य को त्याग
आशा के वन में
कल्पना के पखों से
स्वच्छद करती विहार ।
समर्थ व्यवस्था के
बाज से बचाती
स्वय के व्यक्तित्व का अस्तित्व
स्वतन्त्रचेत्ता है ।
साधनों के तिनके जुटा
उपलब्धि का नीड बनाती
देशकाल परिस्थितियों के
अधड बिखर देते
जिसे बार-बार
आत्मबल सजोती
विश्वास की बाती उकसाती
मुस्तैदी से जी रही है
अपनी सामर्थ्य ।

. . . मूर्ति और आस्था

खण्डित—
मूर्ति हो सकती है
आस्था नही।
अहर्निश अह तोडता है
विश्वास है—
जो जोडता है।
सस्कृति—
सभ्यता के बढते चरण
पूजन अर्चन
मात्र है शृंगार
मूर्ति की आत्मा मे
बसती है मन की पुकार—
आत्म-दर्शन ॥



...एकोऽहं बहुस्याम्

सृष्टि का जनक है
सकल्प
सोद्देश्य है इसलिये
रचना-प्रक्रिया निर्धारित है
कार्य और कारण
ब्रह्म (नियन्ता) का सकल्प
सूक्ष्म से स्थूल तक
जगत्
प्रति-आकर्षित है
ग्रह और नक्षत्र
एक गुरुत्व है
जो थिर किये है
सृष्टि।

. . . सुख-पुष्प

व्यतीत की जमीन पर
उग आया अब
पीडा पौधा
स्मृतियो के दश
अखुआये जीवन
अश-अश
चटक उठी
दद-कली
पत्र-पत्र दु ख
पुष्पित होगा—
कब सुख !



... सूरजमुखी-सा

सूरजमुखी-सा दीन
दारिद्रय से पूर्ण
अपनी अक्षमताओं पर खड़ा
देख रहा है—
शाश्वत् सूर्य
जो अप्राप्य है
वाछनीय है
सामर्थ्य से परे
साम्य खोजता है
एक हास्यास्पद सत्य है !
कहाँ सूर्य-सा वैभव
और एक विपन्न सूरजमुखी
बीच मे है
अमिट अन्तराल
एक सूरजमुखी-सा
मर्त्य जीवन ।।



. . . पूर्णत्व

सबकी अपेक्षाओ मे
वितरित हुआ है
मेरा प्रतिदान !

समाज की चेतना से
अभिहृत मानस लिये
पाया है विकृतिदान !

सभ्यता की स्वधारणाएँ
सस्कारो पर चोट
अन्तर्द्वन्द्वी कैसा निदान !

विभाजित व्यक्तित्व से
अनुपूरित आकाक्षाएँ
मुखापेक्षी व्यवधान !

सामर्थ्य सपूर्णता को
चुनौती उपेक्षाएँ
पूर्णत्व पाने का विधान !

... तृप्ति की खोज

देहिल प्रलोभनो के
केंकडी पजो मे
जकडा मन
सामाजिक चेतना को
छटपटाता दर्द
रूपाकार के मोह की
चुटीली चुभन से
आनन्द आकृष्ट कर
तृप्ति की खोज मे
पाता सिहरन
क्षुब्ध उपलब्धि से
त्राण को उठता है
देहजनित पिपासा से
ऊपर !



. . . अहसास

मानव की
खगोलीय उड़ान
समय के
बदलते प्रतिमान
अन्तरिक्ष मे घुल गये
दिन और रात
सापेक्षवाद—
अब हो रहा है
प्रकाश-वर्ष का नाप
उम्र घट गयी है
देती एक बौनेपन का
अहसास
भौतिकता लगती है सकुल
अध्यात्म ही बढा सकेगा
समय-गति
अपना जीवन-काल !

... आवरण के पार

एक
मानवीय रिश्ता है
जो हमारे बीच
रिसता है।
निर्वसन है मन
प्रावृत् आधार
मृष्टते है
रिश्ते-परिवेश
आवरण के पार
व्यस्तता एक खालीपन भरा
अहसास
रिक्तता भरने
मानवी मन
व्यक्तित्व
जिसमे समाहित
अपना विश्व
अपना विश्वास।

...सूर्य ! भवितव्य का

अतीत की पखुडियो पर
स्मृति के ओस-कण
वर्तमानी अरुणाभ सर मे—
उदित होने को है
सूर्य, भवितव्य का !

कृत्यानुभूत रगो का निखार
खिलने की क्रिया मे
मधुरिम आभा—
गधायित सौरभ-बोध
देती कर्त्तव्य का !

आलेख व्यक्तित्व को
'उत्तिष्ठित, जाग्रति, सयमी' का
सृष्टि-सम्पर्क—
एकात्म-निरूपण करता
दृष्टा को दृष्टव्य का !

. . . सम्बन्ध

असम्बद्ध नहीं कुछ
जब अपूर्ण है
सम्बन्धों की खोज
और मिट ना जाये
अन्तर्विरोध
बरतने लगें गुण-ही-गुण में
तत्व की गुणवत्ता से
करें निर्धारित मानव मूल्य
मिटा दें विसगत
असस्कृत मान्यताएँ
रही हैं जो सर्वोपरि
छद्म परिवेश में
हुये हैं प्रशसित लोग
प्रशस्तियां लिखी गयी जिन्हे
किया गया अभिनदनीत
और यथार्थ की धरा पर
खडा मनुष्य
खोजता रहा उनसे सम्बन्ध !

. . . युगबोध

समस्या के साथ ही
सलग्न होता है
उसका निदान ।
यदि हम तोड सकें
अपने ही आदर्शों के दायरे
छद्म आवरण ।
परिस्थिति और समय की
सीमा लांघ सकें
पा सके युगबोध
तो सत्य से
सजोयेंगे अपने आदर्श
परिमार्जित होगा
सन्निहित आचरण ।



. . . शब्द-शर

दायरा-दर दायरा
तोड़ते जाते हैं
शब्द-शर
उन मसलों के व्यूह
जो अपने बीच है
जिन्हें संकेतों ने भी
अनछुआ है
और भाषा हो गई है
नि शब्द !
मौन
अपनी समूची
भाव-भूमि पर
कर रहा है
नि सृत आनंद !
कुछ तो है
जिसने कर दिया है
समय को थिर।



. . . परिष्करण

सदर्भों से जुडा हुआ
व्यवहार की कसौटी पर
कसा है मेरा परिवेश
स्वय की अहमन्यता
कोई अह नही
सदर्भित अपने
पद-भाव से
करता है नमन
खिल उठता है
मेरा अपना वेश !

... शेष

याद की मुंडेर पर
बैठी दो चिड़ियाँ—
एक उजली
एक काली
समाज के विवेचनात्मक
तीक्ष्ण प्रहार से
उड़ गया उजला पक्ष
शेष है अब—
दागयुक्त दामन
और भविष्य की नींव का
दागी पत्थर !



...जीवन

तत्व की
त्रिदशा-सा जीवन
बाल्यावस्था में दृढ
वय में वह निकला
और अब
जर्जर होने पर
वाष्प-सा उड़ रहा है
त्रिकाल का लेखा
लिख रहा है
और खोजता है
अन्वेषण करता है
स्थिरत्व का रहस्य
इसलिये अब—
जीना रास आ गया है!



... मौसम

मौसम
बदलते हैं अपना रंग—
प्रकृति पर
शरद् जाता है
हेमन्त होकर
करता है अगवानी वसन्त
पर—
परिस्थिति भी जाड़
बदल देती है
मानवी परिवेश
और जीने का ढंग।
वर्षों हो जाता है
जीना भी अर्थ
मौसम में जीना-ही-जीना है
वर्ष मनाता है हर्ष ॥

. . . जीवन

तत्व की
त्रिदशा-सा जीवन
बाल्यावस्था मे दृढ
वय मे वह निकला
और अब
जर्जर होने पर
वाष्प-सा उड़ रहा है
त्रिकाल का लेखा
लिख रहा है
और खोजता है
अन्वेषण करता है
स्थिरत्व का रहस्य
इसलिये अब—
जीना रास आ गया है !

⓮

. . . निदान

सभावनाएँ—
ऐसी कुछ प्रकट हुई
कि अपेक्षाओ के
घुट गये दम
और तर्क-वितर्क को
गुत्थियो मे
अवश होती अपेक्षाएँ
सामर्थ्य-भर उत्तेजित हो
लक्ष्यहीन शिथिल होती
सभावनाओ का भरती है दम
हारती शक्तियो मे—
कही लिप्त है निदान !

. . . दृश्य-पट

दृश्य-पट पर
रूपायित सारे सपन
केन्द्रित इच्छाएँ
जब दूरियाँ छोड
क्षणांश को ही
सम्मुख उपस्थित हो
साकार
अचम्भित कर देती हैं
गढे हुये सम्वाद
भ्रमित हो
हो जाते हैं अवाक्
सारा दृश्य-पट
पुँछ जाता है
आकृति अवयव तक
मात्र रह जाती हैं
प्रश्न-चिह्न-सी
पलक-पट, डाले आँखें !

... सत्यापन

रचना के साथ ही
सलग्न है द्वद्व
जो विवेकानुशीलन से
विश्लेपित करता है
गुणावगुण का सस्थापन
और सघर्षणा की प्रक्रिया मे
तद् रूप सत्यापन को
अर्जित करने मे
प्राप्तव्य है
सम्यक्-ज्ञान ।

. . . अनुत्तरित प्रश्न ?

एक अव्यक्त
अनुपयुक्ति का अहसास
दे रहा है युगबोध ।
हर स्तर है
अनुत्तरित
प्रश्न भर रहे है
सूनापन ।
मौन व्याख्या है
युग का समीकरण
अबोले बोल का
रीते-घट-सा गुंजन ।
कौन—
अपने से जुड़ा है
भिन्न होकर
रह गया है जीवन ।

... शुभेत्तर

परिचित गंध
है आकार ।
नम हवा
देती मुझे स्पर्श
आँखों में सजोया है
कौन-सा मृग-जल ।
रात के साये लगे—
उलूक-सा ठहराव
फड़फड़ाती हो जहाँ
चमगादड़ी-स्मृति
विगत् व्यामोह अब
कितना भयातुर
खोज पाना
इस अशुभ में—
खट्टे अंगूर-सा है शुभ !

. . . याद

ढेर-सा धुआँ
और याद की
एक चिनगारी
परत-दर-परत
समय की राख में
दम तोड़ती
बेवस बेचारी
पिघलती—
देह की ऊष्मा
दृढ़ संकल्प मन के
मौन-मिश्रित
विषय श्लेष्मा !

...दायरे

सवदेनात्मक इ द्रिय शक्ति
बुद्धि की ग्राह्य क्षमता
कल्पना मे उडता मन
तुम्हारी चेतना के
अस्थिर दायर
विचारो का विश्रृ खल क्रम
जब छू लेते हैं
मेरा विस्तीर्ण दृष्टि-पथ
और उभरते है दायरे
फिर दायरे
जिन्हे निगल लेता है
मेरा चेतन व्योम ।
उस पर तुम्हारी
व्यापक बुद्धि का ढोग
कितना कृत्रिम लगता है
कि तुम्हारे विचारो का दायरा
केवल छूता है,
जबकि मैं
निगल जाता हूँ
पूर्ण दायरे को तुम्हारे

. . . विन्दु-वृत्त

एक विन्दु विचार
पायेगा विस्तार
सरल चले या वक्र
समय का है चक्र ।

दर्शन है विस्तृत वृत्त
आचार-संहिता उद्धृत
एक लीक चलना गंतव्य
निर्भर है सारा भवितव्य !

भ्रम के भुलावे अन्यत्र
स्वार्थ का सैलाब सर्वत्र
विचार-सत्व यदि यथार्थ
वृथा भटकाव है व्यर्थ ।

विम्ब होता नही स्पष्ट
विचार-तरंगें हो अस्पष्ट
प्रतिविम्वित हो सत्यकृत्
पुष्ट आधार हो न विकृत ।

. . . भाव-भाषा

"मन मे
भाव उठते है
कही कोई प्रेरणा
पा खेलते-कूदते
कभी सजते-सँवरते हैं
पर आने को जिह्वा पर
झिझकते है
कुंठित हो जाते है हम
भाषा है अधूरी
भाव विस्तृत-तर है
शब्द ओछे पड जाते है
जीवन की गहराई को
अनुभव के तारतम्य
भाषा मे बाधने को
छटपटाते अकुलाते हैं
हार जाते हैं
ग्लानि से गल जाते हैं
हम तभी "

. . . सृजनाकुर

अपरिवर्तनीय नही विनाश
सृजन के जीवन्त अकुर
प्रस्फुटन को आतुर
सृष्टिने कला-कल्पनाएँ
आकार-प्रकार-रूप-रस-गध
विविधता की पृष्ठभूमि मे
नही हैं कोई वर्जनाएँ।
एक नियम है धर्म
सृष्टि का
उद्देश्य कारण-भूता
कल्याण के आधार
सृजन-रूपा
विकास के विन्यास मे
समाहित समय-अकुर
पाता-विस्तार
देता भाव-बोध
जीवन क्षण-भगुर
और विनाश
निरुद्देश्य
मात्र अह की पूर्ति
स्वार्थ के प्रयोजन
सृष्टि का विध्वस
फिर किस प्रयोजन
जो रच न सके
न जाने सृजन-प्रक्रिया
उसे अधिकार
किसके हित-प्रलोभन ?



...हम, कहाँ है ?

हम कहाँ है ?
इस निखिल ब्रह्माण्ड की निस्सीमता मे
नगण्य पृथ्वी की व्यापकता कहाँ है ?
नाप दे पृथ्वी
वे बावन अवतार कहाँ हे ?
अपार जल-राशि की गहन-गहराई मे
हम कहाँ है ?
चुल्लुओ पी गये जल-राशि सब
वे अगस्त्य अब कहाँ है,
हम कहाँ है ?
धू-धू कर जलती
प्रचण्ड अग्निताप को सहनकर
अग्नि-परीक्षा दें
वे सीता कहाँ हैं,
हम कहाँ हैं ?
प्रलयकारी वायु-वेग-जनित
लका की उडान वाले
अजस्र शक्ति-स्रोत
पवन-सुत अब कहाँ हैं,

हम कहाँ हैं ?
आकाश-गंगा में अचल-स्थिर
गोद के हठी
सत्य को ध्रुव करने वाले
ध्रुव कहाँ है,
हम कहाँ हैं ?
इन पंचभूत शक्ति से निर्मित
मानव-देह से
उन पर नियंत्रण और सामर्थ्य की
शक्ति अब कहाँ है,
हम कहाँ हैं ?



. . . असमर्थता–बोध

कृत्यान्त ग्लानि
अविचरित विचरण
अघट मे पानी
मन तापाग्नि
अकल्पित भय
तर्क-कुतर्क सचय
मनोविकृति उपालम्भ
दु खानुभूति
सर्वक्लेश समुच्चय
मन अभिमन्यु अभिहत
भौतिक भ्राति।

इद्रियोपभोगी रथियो से
श्लथ आहत
गर्भ से एक भ्राति
अन्योन्य शान्ति-अशान्ति।

क्षमता-बोध देता
अकरणीय पर
सोच के दायरे
अनाधिकृत क्रोध
अवाछित व्यूह मे
सम्बध-सकुचित
गर्भ मे पोषित
एक भ्राति।

. . . 'स्व'

तुम्हारा
अकथित अन्कर्म
एक मन ग्रंथि
छोड़ गया है
जो—
न खुलती है
न सुलझती है
उसे
रहस्यमय रखना ही
अब 'स्व' हो गया है
और
इन्ही ग्रंथियो से
मन का सम्पूर्ण विकास
अवरुद्ध है
अब तो
मन से परे ही गति है
बुद्धि का अवलम्बन है।



...निष्कर्ष

मन मे विचारो का
एक बवडर उठ
कल्पना के निस्सीम गगन मे
ऊपर उठ रहा
विभिन्न विचारो की धूल-पर्ते
और छुट-पुट
आकाक्षाएँ
इच्छाएँ
लता-पत्र-जैसे
गोलाकार घूम-घूम
उस विचार-बवडर में समा गये
हिल-मिल गये
और तब
विचारो का एक्य
भावनाओ की आर्द्रता से
तप्त तूफान
हृद-उत्पीडन
विकारहीन
एक-रस हो
मन की धरा पर
निष्कर्ष की सफलता से
झर गया
बरस गया
तब उत्पीडित
विक्षिप्त मन
विचारो के बवडर से
शान्त हो गया
निष्कर्ष पा।

. . . जिजीविषा

मकडियो के जाल से
आकडे आमद हुये है
और हम वेवस
जीवनाशा लिये उलझे।
और भी उलझाये गये है
मकडी के पजे
अपनी सियासत मे
लालच की लार-डोरो से
बुन रहे है
हमे फँसाने का ताना-वाना
जिसे जानकर भी
करना होता है अनजाना
ताकत और मेधा को लडाई
हो तो भी हाथ-पैर मारें
अकारण फँसे
वक्त का भोज्य वने
केवल वोझ ढोना
वेगार गाना
वोथल जिन्दगी है—
ये भी न जाना
सामर्थ्य तो समर्थ की है
हमे समझा जाता है वेगाना
जानकर भी कही होता
मौत के मुह मे जाना।

टह गय निमिय

. . . दर्द-भाषा

मर्ज का मर्म
विज्ञ निदान
दर्द का धर्म
अनचाहा व्यवधान।
दया-दुआ दो शब्द
सहानुभूति के
भरते घाव रिसते नि शब्द।
संगीत तारतम्य को
सामाजिक संवेदना
प्रत्यंग के क्षोभ-क्षुधा
मर्ज के अंग-संग
चुनते क्षय-क्षार
एक दर्द-दर्शन
चिन्तमर होते विचार
बाह्य आचार
आत्मशक्ति-संचार
व्यथा का समुचित निदान—
सत्य-समर्पण।

. . . मनोनीड़

चहारदीवारी मे
सुरक्षित अन्त करण
अन्तर्मुख है विवेचन मे
मन के नीलाकाशीय वातायन मे
स्वच्छद है
पाखी-सा विचरण मे
चित्त का चारु गुलाबी दीवार मे
चचल लहरें बद स्थिर
(स्मृतियो के आलेख)
शोधित
सवेदना-विचारो की
हरित हहराती
तर्कों की त्रासदी
बुद्धि के द्वार खटखटाती
सचय अनुभूति आधार होते
रक्तिम-श्याम आभा प्रवर
अह के मूलाधार
ज्ञानार्जन स्तर पर
प्रकाशित कोश
प्राप्तव्य वाछित तोष।

. . . पूर्णता की ओर

परिस्थितियो के
द्वन्द्व मे फँसा
सूत्रधार के अव्यक्त इशारो मे
कठपुतली की तरह
नियन्त्रित कलापो मे
पात्रता ढोता रहा
जीवन जाह्नवी-सा बहता रहा
अपनी अस्मिता के दायरो मे
उन्नत प्रदर्शन के लिए
मुमुक्षु हुआ नर
अव्यक्त डोर की खोज मे
धर्मानुशीलन से
सूत्रो मे सूत्रधार के
पूर्णत्व सत्व-शोध को
करता रहा अनवरत प्रयास
जिससे पात्रता की पवित्रता
बनी रहे अक्षुण्ण
जिज्ञासु साधनो को
उपलब्धि को सजोता रहे
अश की पूर्णत्व यात्रा—
नर से नारायण की ओर ।

. . . चिन्ता–चिन्तन

चिन्तन के क्षण
चुग गया
चिन्ता का मुर्ग
और
अधरे को बांग दी
अलस्सुबह !
अनिद्रा बोझिल पलकों पर
नाचती रही
स्मृतियों की चिड़ियाएँ पर
जो स्फूर्त हैं
सम्पूर्ण दिवस को
और यहाँ आहत
बौखलाई कल्पना लिए
सपन हुये हवा
आलस्य-आमादा
तोड़ने विराम
निराशा नेपथ्य में
बजाती रही
असफलता-राग !
भोर-निशा
सब सधे सपना
मंत्र पर जगाती है
जगती में जीने की सत्ता,
द्वन्द्वों में जुड़ रही एक
आशा की चिन्ता-अगन

. . . समय

दुःख से बोझिल समय
सर पटकता रहा
कूटता रहा दुखती रग
सुख की कल्पना-हवाएँ
न दे सकी सुकून
रिसते रहे
रह-रह घाव
खड़ा रहा यातना-चक्र
समय बोझिल !
मगर के आँसू बहाती सहानुभूति
सिरहाने बैठी रही पराये-सी
पख-कटा भूत-भविष्य
फड़फड़ाता रहा बेचैन
बोझिल समय दुःख का !
त्रासता वर्तमान
सन्त्रास का रोना रोये
दुःख ढोये
मन है कि
बहेलिया-सा मारे बाण
और समय
देह-सा तड़पे
बेचैन बोझिल
दुःख ही जिसका ठाँव !

. . . समय

दुःख से बोझिल समय
सर पटकता रहा
कूटता रहा दुखती रग
सुख की कल्पना-हवाएँ
न दे सकी सुकून
रिसते रहे
रह-रह घाव
खड़ा रहा यातना-चक्र
समय बोझिल ।
मगर के आंसू बहाती सहानुभूति
सिरहाने बैठी रही पराये-सी
पख-कटा भूत-भविष्य
फड़फड़ाता रहा बेचैन
बोझिल समय दुःख का ।
त्रासता वर्तमान
सन्त्रास का रोना रोये
दुःख ढोये
मन है कि
बहेलिया-सा मारे बाण
और समय
देह-सा तड़पे
बेचैन बोझिल
दुःख ही जिसका ठाँव ।

. . . यायावरी देह

. . . गतव्य

दूरन्त हे
सभावनाओ का क्षितिज
अपनी आकाक्षाओ की
परिधि से अभी
वृत्ति की त्रिज्या मे
होना है परिष्करण
मन का व्यास
पायेगा विस्तार तभी
बुद्धि की ऊँचाई का
तर्क से तिर्यक-स्पर्श
परिधि-पार
दिव्य ज्ञान-बिन्दु से
क्षितिज के कोण को
देख सके वही
अपना गतव्य
अन्तरिक्ष का अनत ।



---

*इस रचना पर लखक को 1979 के आशीर्वाद पुरस्कार (बम्बई) से सम्मानित किया गया था ।

. . . विपन्नता का अहसास

. . . तपता मन

स्मृतियो से तरगायित
भावनाओ का महासागर
मन के महानगर से
आ जुडा है
व्यथा से तपता मन
भौतिक तापो से झुलसा
सागर मे ढूँढता है शान्ति
निर्मल बुद्धि
जो निखार दे
देह के अयन
विद्युत्-वृत्त-कान्ति
ज्ञान का सृजन !



सुन्दरम्



. . . ठहरो,
एक निमिष !

ठहरो ।
एक निमिष ।
रूप-वारुणि पीयूँ
अक मे भर लूँ
नयन के
तिक्त अधरो पर
तुम्हारा नाम धर लूँ
मरु-हृदय मे
रूप-रस की
बाढ वढ लूँ
कल्पना के
कोहरिल-सर
याद के विहग
चुग लें–
एक रस-विन्दु
और पढ लूँ ।।

. . . स्वप्न

स्वप्न !
स्वप्न की कैसी परिधि
कैसा आकार
केवल अर्द्धचेतन मन का पर्दा
उस पर नाचती
कल्पना की तस्वीरें
तस्वीरें !
अपनी भावनाओं का बिम्ब
मन की प्यास
हृदय की धड़कनों को
जैसे दे दिया हो आकार
आकार !
उन अप्रत्याशित
अनाधार
अतृप्त मन के
मिथ्या सपनों को !!

. . . स्नेहिल स्पर्श

और तब !
मैं महसूसता हूँ
उन आतुर
नयन-युगल का
स्नेहिल स्पर्श
पीठ पर संवेदन
और जैसे
उग आती है
सौ-सौ आँखें
जब खालीपन का
अहसास लिये लौटता हूँ
जो प्रत्यक्ष की
यथार्थता को
नकारते है !!

. . . दृष्टि-बंध

वार वार
डूबें-उतरायें
स्निग्ध कैसा है दृष्टि-बंध
लहर-लहर समन्दर है !

भोली-निर्दोष आँखों में
एक तीर्थ देह-धन
प्रेम-भरा अम्बर है !

निस्पृह वासना-रहित
जिज्ञासु सम्मोहन
अतल-तन अन्दर है !

अतृप्त प्यास संवेदन
मौन रूप-आकर्षण
सौन्दर्य स्वयं मुखर है !

. . . मुग्धा

जिससे
आरक्त हो कपोल
वह दृष्टि है
अनमोल !
अर्द्धोन्मीलित आँख
सपन-ससार को
खुली अब पाँख !
भाव का स्पदन
स्फुरित अग-अग
साकार है अनुबन्ध !
मद-मथर उतरती
प्राणो मे
प्रिय तुम्हारी
कुवारी देह-गध !



. . . अव्यक्त

अपने-आपको
ढूढता हूँ मैं–
मुझमे
तन की सूक्ष्मतम गहराईयो मे
रोम-रोम मे
मनोमय जगत् की
मानवीय इकाईयो मे
बुद्धि के तर्कों की
अतृप्त तराईयो मे !

खोजता हूँ–
व्यवहृत् जीवन के
अदृष्ट दृष्टिकोण मे
तौलता हूँ
सृष्टि की जड-चेतन समष्टि मे
जीवन के उभय-अन्त
मिलाने वाली
अव्यक्त आत्मा हूँ
मैं !

. . . तादात्म्य

सृष्टि की सुराही मे
सौन्दर्य की सुरा
साकी सुनयना
सराबोर मन-प्राण
मौन हुई गिरा ।
आत्म-आनन्द मे
मदहोश पान
तादात्म्य सृष्टि से
लयात्मक सम
सगत खुमार की
सर होता खम
आदि-अन्त का
विसरा सिरा
थम गया समय
तन्मय
माया से मन फिरा ॥

. . . अनिर्वचनीय

चाक्षुष-सम्मोहन
अभिभूत किये है
मत्र-मुग्ध !
बाह्य चेतन
सिमट उतरा
अन्तर्मुख
कूर्म गति-शून्य
एकीकृत् मन
श्वासोच्चारित मत्र !
मानसांकित मूरत
अन्त तक चैतन्य
शृंगार से अध्यात्म तक
अमूर्त से नि सृत
आत्मा के बोल !
(ज्ञान की धरा पर
आया सत्य-पट खोल !)



. . . शब्दातीत

मधु-हास
विखेर गया
मदिर गंध !

अलसाई कलो की
तिर्यक देहयष्टि
मौनाकर्षण
मधु-स्राव
नशीला—कसाव
स्नायु-बंध

टूटे संयम
मधु-रत्य
शब्दातीत छंद !



. . . खजुराहो-दर्शन

निरकुश की प्रवृत्ति
अधो
देह की गति
पशुत्व
प्राकृत नि सृति
देहाभिवैभव भौतिक नियति

शरीर आश्रम
मन मन्दिर
मार्कण्डेय-विधान
विजयेन्द्रिय
तन-मन तृपित
उत्कीर्ण प्रस्तर-प्रतिभा
मन्दिर भित्ति कृति

यौनानुकृतियाँ युगल तृप्त
गर्भ-गृह आवेष्टित
आत्मलिंग मुक्ति को
आत्माहूत-यज्ञ
खजुराहो-दर्शन ।

. . . शक्ति-साधना

श्रद्धा का जल लिये
भावना चली
अभीष्ट पर चढाने ।
सद्गुणो के सुमन
कुमकुम सत् कर्म का
प्राप्ति का श्रीफल
मृदुलता का नैवेद्य
पूजा की सस्कार-थाली मे ।
शुद्ध-वृत्ति से सद्य स्नाता
आस्था के सन्मार्ग
धर्म की चुनरी ओढे ।
मन की बाती जला
सकल्पो का तेल
बुद्धि उतारे आरती
शक्ति की उपास्य
आत्मोन्नति के उत्तरोत्तर प्रयास
मानवता को त्राण
हो तिरोहित
कलि-कल्मष-तम
आलोकित ज्ञान का प्रकाश
शक्ति-माँ
वर दे ॥

. . . कृषिका

धानी आँचल से
झरे छपे फूल
झाँकती लुनाई लिए
स्मित मुस्कान की
बंकिम चितवन ।
झुकी हुई भर आई
झोली में उभार
रोपती रोपे
कोणीय कमर से
सट गया रूप का आकार ।
खिल गया फूल-सा
काम में मशगूल-सा ।
माटी से जुड़ी
उदर के लिये
देती उदर उत्पादन अन्न ।
उदारमना
ममत्वमयी
कृषि देवी
कर्म के काँटों में
फलाकांक्षी फूल ।
धानी आँचल से
झरे छपे फूल !

. . . शरद् चन्द्रिका

भानलोक मे
झिल मिल-झिलमिल
झरने लगी
स्वत कल्पना
सद्य स्नाता
अगो पर कैशोर्य रचाती
ढरती विचार-बूंदो से
निखार दिये
अनग-अग के
रूपचद्र थिरकते ऐसे
पचम मे देह-बांसुरी
स्वरती आरोह-अवरोह
सांस पीते रहे
मादक धडकनें
चांदनी चर्चित हुई
बिखेरती
शीतलता शरद् को !

. . . सृजन-क्षण

ओ !
सृजन के सिद्ध-क्षण
मेरे प्रश्वेद के वे कण
सार्थक हो शाश्वत्
शोणित के कण-कण
उन्मुक्त प्रेरित ये स्रोत
निर्झरित हो अबाध
सृजित करें एक सृष्टि
कला-सौष्ठव की अभिव्यक्ति
सोद्देश्य विचार-यष्टि
नि सारिता के चेतन विकल्प
उभय-अन्त मे मूर्तरूप
उपलब्ध अभीष्ट साध्य
अंकुरित हो आनंदातिरेक
ओ सृजन के सिद्ध क्षण !!

. . . स्मृति-दश

'स्थितियो को
सम-समानता मे
स्मृतियो की उद्भूत आकृतियां
अपने न्यूनाधिक प्रेरण पर
चित्रमयता उकेरती
आवेगो की तीव्रता से
विशृ खल मन स्थितियो को
आवद्ध करती
तारतम्यती
अतीत से जुडकर
सपनो को देती धरातल
करती घाव पर एक और घाव
पीडा का स्मृति-दश
सुखानुभूति मात्र है
क्षणिक् अश ।



. . . नारी

सृष्टि के समस्त
सौन्दर्य-उपादान से सज्जित
श्रद्धा का रूप-
सुकोमल है नारी !
कमनीय आधार पर
शक्ति की स्रोत
टूटकर भी
सृष्टने की क्षमता
हत होकर भी
हित मे हुलसती नारी
कैसे हो सकती है बेचारी !
विविध आयुधो मे
विवेक के
आहत करता अह
लेता पौरुष की पेंग
हवा के झोको-मा
खेलता-
रूप-रस से
श्रेष्ठता की मोहर ठोकता
स्वय मे कितना है पगु
नारी का निरादर कर
सान्निध्य को बिछ जाना
तिरस्कृत होकर भी
पूणता की ललक लिये
मिट जाता
जिससे फिर सृजन
कर सके नारी !



. . . सृष्टि

अभिभूत अनुरक्त है
आरक्त कपोल लोल,
अभिसार अभिषिक्त हुये,
आनन्द मे अबोले बोल ?

पीत पथराई पिपासा,
पियराये प्रेम-पछी-गोल,
पीडते प्राणो मे पीयूष,
पनियाये-ललछाये रहे डोल !

सृष्टि-समर्पित सृष्टि,
सृष्टे सार-भौम खगोल,
स्व-समर्पण श्रद्धा से,
सगतीते जीवन-गाँठ खोल !

. . . दर्द

तुमने
देखा भी नही
शायद
सुना भी नही—
कि दर्द लेता हो
आकार !
महसूसा है मैंने
आहत बाहुओ मे
भर कर पिया है
मैंने खूब जिया है
दर्द है मेरा हमसाया
अपरिचय की राह का
मूक पथ-प्रदर्शक
सत्य की कसौटी पर
खरी परख !



. . . पीडा का मन

शब्दभेदी शब्द
आहत कर गये
अन्तर तक मर्म
तुम्हारी वाक्-शक्ति
फिर भी विजित नही
क्योकि मौन पीडा पीता
सोचता हूँ
प्रति-उत्तर है
किन्तु कटु
जो ध्वस्त कर देगा
तुम्हारा अस्तित्व
पीडा का मर्म
तुम्हे ज्ञात नही
खाली कर लो
पूर्ण तुम्हारा तरकस
वाङ्मय
फिर भी वध न सकोगे क्रोंच
पगतल मे पद्म नही
आहत हो
अजेय हो गया है
अब ये तन
शायद समझ सको
कभी तुम
पीडा का मन

. . . बिम्ब

जब भी देखा है
दर्पण मैंने
मुझे अपना बिम्ब
नहीं दिखता !
निष्ठा का रूप
अपने सचय के अनुरूप
साध्य की सेवा मे
तपाया तन
मेरा साधक मन
बुद्धि के उजाले मे
अभी भी अस्पष्ट है
पूर्ण ज्ञान की छाया को
अभी भी मन
मेरा भरमाया है
मैं स्वय को
न देख भी
सन्तुष्ट हूँ
कर्म की कसौटी पर
खरा उतरने मे
कितना दुरुस्त हूँ !

... सञ्चित पराग

मन-सर उर्मिल झिलमिल
खिलती पाँखुरियाँ कोमल
पंकज-विचार निर्लिप्त है
हृदयावेग संवेदन विकल
सज्ञायित होते आलेख !

सुप्त भौंरे, बन्द आलम्बन
दिनकर-विवेक-तर्पण
करते हैं स्वच्छंद क्रंदन
सुमन-सौरभ-आकर्षण
मनचीता वातावरण देख !

तर्क-माखी मधु-सञ्चयिता
सञ्चित पराग पुष्प अनेक
प्रस्तुत मन्त्र मधु शिक्षेय
शिष्य-साधु-सा रखें विवेक
काटो आपन्नता लक्ष्मण रेख !

. . . समर्पण

चटखने की पीडा
देती गध फ्लाश
कली-प्रस्फुटन कर
प्रभूत-प्रसून का
परागानुवेष्ठन।
भ्रमित भ्रमर-मन
ढोता काम-भार
सुरभि-सौंदर्य आकर्षण।
तन ऊर्जा तेज
अस्मिता-ओज
प्रमुदित मह-मह वातावरण।
प्राकृत प्राप्तव्य का
गुण-स्वाद वितरण।
निर्लिप्त नर्त्तन
सृष्ट सार्थकत्व को
करता स्व-समर्पण।

. . . साक्षात्कार

अटूट चक्र
तरंगायित कल्पनाएँ
मानसिक वर्जनाएँ
अप्राकृतिक न हो जाएँ
बुद्धि के तर्क-द्वार
मत खोलो बार-बार
मन से ही मिटा दो
देह के भौतिक भार
मन का मन्दिर रखो पवित्र
देह धो
निर्मल हो
बुद्धि के कपाट तब खोलो
ज्ञान के पुजारी से
आत्मा के देव का
करलो तब साक्षात्कार
देह—
देह रहे
विकारों का न गेह रहे ।

भिनसारे
मोतिया बादल
मुँडेर पर काँवता कौआ
और मुर्ग को
कुहराई बाँग
चक्की की चाल मे
परिवार-जन की
सपनीली घुर्राती नींद
चलकी श्रृंगारिक धुन
अरि के काटते मनसूबे
अरई की लय
स्नेह-पागती
लोन (मक्खन) की लुगदी
पनघट पर
जज्बाती गागर
या किरीता कुआरे का
कोरा मन
भरना-उलीचना
गृहस्थी-समाज और वन
कहे-अनकहे सपन
रहट की रट मे
लोकगीत का मन
सगीतमय जीवन
और दिन-भर का थकियाया जन
चौपाल की धुआती चिलम मे
ढुँढता नाति न्याय और सगुन।

...अभीष्ट

आओ ! शब्द-जाल फेंको
एक-एक शब्द
परख, तराश कर देखो
अभीष्ट पाने को
एकाग्रता वशी में
माधुर्य-चारा धर देखो
काँटा-सत्रास में
अनुभव की नोक पर
स्नेह-रज्जु साधकर देखो
तन्मयता-तप से
साधो साध्य
साधना-मन्त्र फूंक कर देखो
अलभ्य अभीष्ट नहीं
नाद को बाँध स्वर में
भाषा-माध्यम-समन्दर में
प्रतिफल सामर्थ्य-भर देखो
आओ, शब्द जाल फेंको ।।